EDUZONE: International Peer Reviewed/Refereed Multidisciplinary Journal (EIPRMJ), ISSN: 2319-5045
Volume 13, Issue 1, January-June, 2024, Available online at: www.eduzonejournal.com

चोल स्थापत्य कला : एक सक्षिप्त अध्ययन

डॉ0 प्रवीण कुमार तिवारी

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, वीर बहादुर सिंह, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ0 प्र0)

दक्षिण भारत में 800 ई0 से 1280 ई0 तक का दीर्घ शासन काल चोल के अन्तर्गत आता है। इस दौरान चोलों ने अपनी सत्ता एवं शक्ति का बिस्तार न केवल भारत वरन्, भारत के बाहरी क्षेत्र में भी स्थापित किया। अपनी सत्ता एवं संप्रभुता के चरमोत्कर्ष के समय उनकी सत्ता का बिस्तार उत्तर में गंगा घाटी से लेकर दक्षिण में श्री लंका तक विस्तृत था। इसके अतिरिक्त वर्मा, मलाया, तथा दक्षिण पूर्व एशिया के विस्तृत द्वीपों पर उनका वर्चस्व स्थापित था। समुद्री क्षेत्र में इनके वर्चस्व के कारण भारत के पूर्वी समुद्र तट को चोल मण्डल के नाम से जाना जाता था। द्रविड़ क्षेत्र में पल्लव, चालुक्य, राष्ट्रकूट एवं पाड्य शासकों को पराजित कर अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित की। राजनीतिक विस्तार के इस दौर में चोल शासकों ने कला एवं संस्कृति को संरक्षण देने का कार्य किया। चोल शासकों के दौर इस क्षेत्र में भव्य एवं विशाल मंदिरों का निर्माण कराया गया, जो द्रविड़ शैली के सर्वोत्तम उदारहण माने जाते है। इनमें से बहुत से मंदिर वर्तमान समय में भी चोलों की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक भव्यता का प्रमाण प्रस्तुत करते है।

चोल स्थापत्य कला के प्रथम चरण में आदित्य प्रथम, परान्तक प्रथम, गण्डरादित्य, परान्तक द्वितीय तथा उत्तम चोल तथा राजराज प्रथम जैसे चोल शासकों की स्थापत्य कला को रखा जाता है। राजराज प्रथम के काल में स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। राजराज के पूर्व त्रिरुचिरापल्ली का तिरुतनतोरीश्वर मंदिर, तिरुचन्तुराई का ओडवनेश्वरमंदिर, तिरुप्पुन्तुररुति का पुष्पवनेश्वर मंदिर, तिरुवेदिकुडी का वेदपुरीश्वर मंदिर, तिरुप्पलनम का आपद् सहायेश्वर मंदिर, कुम्भकोणम का नागेश्वर स्वामी मंदिर, तिरुवायूर का पंचनदीश्वर मंदिर, तिरुकाट्टापल्ली का अग्नीश्वर मंदिर, कीलैयूर का अगस्तीश्वर मंदरि समूह, लालगुडी का सप्त ऋषीश्वर मंदिर तथा तिरुप्पतुरई का दारुकावनेश्वर मंदिर प्रमुख है।[1] इन मंदिरों में चोल की प्रारम्भिक कला के दर्शन होते है। आयातकार गर्भगृह, अर्द्धमण्डप तथा इसके सामने परवर्ती काल का मण्डप, उर्ध्व विन्यास में ऊँचा आधार, जगती, भित्ति तथा कपोत जैसी विशेषताए प्राप्त होती है।

चोल स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष चोल शासक राजराज प्रथम के शासन काल में दिखाई देता है। इस दौरान राजराज प्रथम, उनकी बड़ी बहन, रानियों तथा सांमन्तों के द्वारा बड़ी संख्या में मंदिरां का निर्माण करवाया गया। राजराज के द्वारा निर्मित मंदिर द्रविड़ स्थापत्य कला के पर्याय के रुप में जाने जाते है। इस दौरान सिद्धनाथ मंदिर, सामवेदीश्वर मंदिर, सकल भुवनेश्वर मंदिर तथा अचलेश्वर मंदिर लघु आकार के मंदिर है।[2]

चोल कला के द्वितीय चरण का प्रारम्भ राजराज प्रथम के द्वारा तंजौर में निर्मित बृहदीश्वर मंदिर को माना जाता है। इस विशाल मंदिर का निर्माण ग्यारहवी शताब्दी के प्रारम्भ में राजराज ने अपनी राजधानी में करवाया था। भारत के सबसे ऊँचे तथा श्रेष्ठतम मंदिरों में इसकी गणना की जाती है। राजराज प्रथम ने अपनी धार्मिक भावना के अनुरुप इस शिव मंदिर के निर्माण में अपार धन का व्यय किया। बृहदीश्वर मंदिर अपनी महत्ता, अभिकल्पन की गुणवत्ता तकनीक तथा अलंकरण में दक्षिणी विमान के वास्तुशिल्प की पराकाष्ठा का प्रतीक माना जाता है। राजराज प्रथम के नाम पर इसे राजराजेश्वर मंदिर के नाम से भी जाता है।[3] इस मंदिर की परिकल्पना विशाल स्तर पर एक सम्पूर्ण परिसर के रुप में की गई है। इसे तमिल वास्तुशिल्प की महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता है। यह मंदिर एक विशाल आयातकार प्रागण में निर्मित है। इसकी रचना कठोर ग्रेनाइट पत्थरों के विशाल खण्डों से की गई है। इस मंदिर स्थापत्य का प्रमुख तत्व विमान एवं इसका मण्डप है, जो कि एक ऊँचे आधार पर स्थापित है। इसका मुख्य मण्डप एवं विमान वर्गाकार है। इसका विमान द्रविड़ शैली का सबसे ऊँचा

विमान माना जाता है। विमान एवं मण्डप एक ही अधिष्ठान पर स्थित है। इसी आधार पर स्तम्भ मण्डप तथा नन्दिमण्डप भी निर्मित है। स्तम्भ मण्डप की योजना इस प्रकार बनाई गई है कि दोनों तरफ प्रदक्षिणापथ छोडते हुए मध्य का स्थान सुरक्षित है। पूर्व दिशा की ओर इसका प्रवेश द्वार खुला हुआ है। गर्भगृह को घेरता हुआ विमान का अधिष्ठान द्वितल है तथा संधार प्रणाली मे दुहरी दीवार वाला है। बाहरी एवं भीतरी दोनो दीवारों की मोटाई समान है। पंद्रह मीटर की ऊंचाई तक ऊर्ध्वस्थ उठती हुई बाहरी दीवार दो तलो ंमें भारी पत्थरों द्वारा विभक्त की गई है। इसके भीतरी भाग में प्रदक्षिणापथ बना हुआ है। विमान की बाहरी भित्ति को रधिका प्रकार से उभारा गया है बाहरी भित्ति के चारो तरफ चार द्वार है। इस प्रकार विमान का आकार चतुर्मुख स्वरुप में दिखाई देता है। जिस प्रकार की रचना विमान के प्रथम तल के भित्तिका की है, उसी प्रकार का स्वरुप ऊपरी तल में दिखाई देता है। अर्द्धस्तम्भ कुंभ एवं पंजर प्रकार के है। दोनो तलों पर प्रदक्षिणापथ का निर्माण किया गया है। प्रदक्षिणापथ को विभिन्न देवी देवताओं के चित्र वल्लरी के माध्यम से सुसज्जति किया गया है। इसका विमान पिरामिड प्रकार का है, जिसका प्रत्येक तल सिमटते हुए अन्त में आधार भाग का एक तिहाई ही रह गया है। विमान क्षैतिज रुप में अनेक हारो में विभक्त है, जिस पर कूट, शाला एवं पंजर प्रकार की संज्ञा है।[4]

इस मंदिर के अन्तिम तल के हार पर नन्दि बने है। विमान की ग्रीवा अष्टभुजाकार है तथा उसके ऊपर शिखर की स्तूपी अष्टकोणात्मक है। विमान खोखला है तथा उसका पूर्वी भाग पाँचवी मंजिल तक कुछ उभरा हुआ है। इसके नीचे द्वितल पर एक अर्द्धमंडप निर्मित है। मंदिर का प्रांगण खुला हुआ एवं विस्तृत स्वरुप में है। इसके पूर्वी भाग में एक छोटा गोपुरम निर्मित है प्रांगण के मध्य में अनेक अर्द्धस्तम्भ बने हुए है तथा इनके मध्य के खाली भाग में पत्थरों की एक श्रृंखला प्राप्त होती है। इस परकोटे के भीतर द्वितल प्रकार का स्तम्भ युक्त बरामदा है, जिसके पार्श्व भाग में 36 द्वितलीय लघु विमान है। यह एक प्रकार के देवकोष्ठ है। चारो कोनो में मध्य भाग के प्रकोष्ठ में द्किपाल की मूर्तियां स्थापित है। इस परकोटे में स्थित गोपुरम के बाहर एक और ऊँचा गोपुरम है तथा उसी से जुड़ी हुई एक प्राचीर है, जो कि मंदिर के चारो तरफ विस्तृत है। भीतरी दीवार में गोपुरम के अतिरिक्त तीन तरफ तीन और तोरण द्वारा का निर्माण किया गया है। मुख्य विमान से निकली हुई मकर प्रणाली बाहर की तरफ उकडूँ बैठे एक गण के मस्तक पर स्थित है।[5] राजराज के काल में मंदिर योजना में इसे एक नवीन तत्व के रुप में माना जाता है, जिसका परवर्ती कालीन चोल मंदिरों में व्यापक स्तर पर प्रयोग किया गया।

इस मंदिर के प्रांगण के भीतर अन्य बहुत सी स्थापत्य संरचनाओं को स्थापित किया गया है, जिनमें दक्षिणामुखी अम्मान मंदिर अथवा राजराज की पत्नी बृहन्नायकी का देवी मंदिर है, जो कि नंदी के उत्तर में स्थित है। यह विमानशाला, शिखर एवं अक्षीय मंड़पों से युक्त है। इसी के पास नटराज का दक्षिणामुखी सभामंड़प है। दक्षिण पश्चिम एवं उत्तर पश्चिम में पूर्वाभिमुखी गणेश एवं सुबह्मण्य मंदिर है।[6] यद्यपि यह सभी निर्माण परवर्ती कालीन है। इस प्रकार बृहदेश्वर मंदिर राजराज की भव्यता एवं उसकी धर्मपरायणता का प्रतीक है। इसमें कला की प्रत्येक शाखा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति मिलती है। इसके अतिरिक्त इस मंदिर से प्राप्त पुरालेखों से मंदिर के निर्माण एवं कला के सम्बन्ध में अनेक जानकारी प्राप्त होते है।

चोल कला के द्वितीय चरण में छोटे बड़े बहुत से मंदिरों का निर्माण करवाया गया। राजेन्द्र प्रथम के काल में मद्रास के निकट तिरुवोर्रियुर मंदिर प्रमुख है। यह मंदिर काले पत्थरों से निर्मित अर्धवृत्ताकार एवं बहुमंजिला विमान से युक्त है।[7] यद्यपि यह अपेक्षाकृत एक छोटी संरचना मानी जाती है। यहॉ से प्राप्त शिलालेख में इस मंदिर के निर्माण संरचना के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

राजराज के पुत्र राजेन्द्र प्रथम ने अपने द्वारा स्थापित नवीन राजधानी गगैकोंडचोलपुरम में बृहदेश्वर नाम से ही एक अन्य विशालकाय शिव मंदिर का निर्माण करवाया। इसका निर्माण गंगा घाटी में अपनी विजय स्मृति के रुप में करवाया गया। इस मंदिर का निर्माण आयताकार प्राकार के भीतर किया गया है। इस मंदिर मे केवल दो प्रवेशद्वार है। एक पूर्व दिशा में

स्थित गोपुरम जो कि वर्तमान में खंडहर मात्र है तथा दूसरा उत्तर दिशा में स्थित द्विमंजिला तोरणद्वार। इस प्राकार का अधिकांश भाग क्षतिग्रस्त अवस्था में है, परन्तु इसका विमान एवं मण्डप सुरक्षित है। इसका विमान तंजौर के बृहदेश्वर मंदिर की तुलना में छोटा एवं कम ऊँचाई वाला बनाया गया है। इस मंदिर का गर्भगृह, अंतराल एवं मण्डप संयुक्त रुप से एक ही अधिष्ठान पर स्थित है जो कि पूर्व पश्चिम दिशा में एक सीध में बनाए गए है। विमान एवं मण्डप को जोडने ंवाला अन्तराल भव्यरुप में है तथा उसके उत्तर एवं दक्षिण की ओर अन्तर्मुखी द्वार स्थित है। मण्डप को 250 पंक्तिबद्ध स्तम्भों के आधार पर बनाया गया है। इसकी छत सपाट एवं कम ऊँची है। स्तम्भ पंक्तियों को पृथक आधार पर बनाया गया है। अंतराल की छत को मण्डप से ऊँचा बनाया गया है। तंजवुर के बृहदेश्वर मंदिर के समान ही इसका अधिष्ठान एवं भित्ति भाग है, परन्तु शिखर का संयोजन भिन्न रुप में है। इस प्रकार अपनी भव्यता एवं शैली में दोनों में अन्तर दिखाई देता है। तंजवुर का बृहदीश्वर मंदिर जहॉ पौरुष प्रधान है, वही गगैकोंडचोलपुरम का मंदिर कोमलता प्रधान है।[8]

चोल स्थापत्य कला का तीसरा चरण 1070 ई0 से प्रारम्भ होता है। यह चरण चोल स्थापत्य कला के द्वितीय चरण का स्वाभाविक विकास की अगली अवस्था की ओर संकेत करता है। मंदिरों की आन्तरिक एवं वाहम सज्जा पर इस चरण में विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया। इस चरण में कुलोतुंग प्रथम, विक्रम चोल, कुलोतुंग द्वितीय, राजराज द्वितीय के द्वारा अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया गया।[9] राजराज द्वितीय के काल में दारासुरम का ऐरावतेश्वर मंदिर, कुलोतुंग प्रथम के समय का त्रिभुवनम का कम्पहरेश्वर मंदिर प्रमुख है। इन मंदिरों की स्थापत्य शैली पूर्वकालीन चोल कला के समान ही है। राजराज द्वितीय द्वारा तंजवुर में राजराजेश्वर अथवा ऐरावतेश्वर मंदिर का निर्माण करवाया गया। इस मंदिर की पंचतल विमान अधिरचना में तल हारों में कोने के तत्वों का एक बुद्धिमत्ता पूर्ण रुपांतरण दिखाई देता है, जो कि वर्गाकार, अष्टभुजाकार एवं वृत्ताकार कर्णकूट है। यह सामान्य रुप से नागर, द्रविड़ एवं वेसर शैली का मिश्रित स्वरुप है। अर्धवृत्ताकार वेसर शैली के पंजर को निम्नतल के कोनों पर तिरछे मोड दिया गया है। शीर्षस्थ तल पर चार वर्गाकार कर्णकूट बनाए गए है, जिसके दोनो तरफ एक एक लेटा हुआ नन्दी है। इसका शिखर पंचतलीय है, जिसके सबसे ऊपरी तल को प्रस्तर के स्थान पर ईटों का प्रयोग किया गया है।[10] इस मंदिर के विमान के सामने मुखमण्डप तथा उसके सामने अग्रमण्डप स्थित है। यह अग्रमण्डप अलंकृत स्तम्भां के आधार पर बनाया गया है। मुख्य विमान, शिखर एवं स्तूपी की योजना बृहदीश्वर मंदिर के समान है, यद्यपि इसका आकार प्रकार छोटा है। इस मंदिर के ताकों में स्पष्ट एवं गोल शिल्पांकनों एवं लघु फलकों द्वारा संगठित एवं पौराणिक दृश्यों के उत्कीर्णनां से अलंकृत किया गया है। मुख्य विमान की दीवारों के चारो ओर कमरबन्द के समान बनी पट्टी पर 63 शैव नयनारों की जीवन कथा को संक्षिप्त रुप से चित्रित किया गया है। इसकी दीवारों की ताकों पर बड़ी संख्या में बेसाल्ट जैसे पालिशदार पत्थर का उपयोग कर उत्कृष्ट मूर्तियों का निर्माण किया गया है। वर्तमान समय में इन सभी मूर्तियों को तंजावुर कला दीर्घा में सुरक्षित रखा गया है। इस पूर्वामुखी परिसर के बंद महामंडप के साथ एक खुले बरामदें जैसा अग्रमंण्डप इसके दक्षिण में प्राप्त होता है, जिसमें तराशे गए अलंकृत स्तम्भों के फलक पर शिल्पांकन किया गया है। इस मंदिर की पूरी संरचना ग्रेनाइट पत्थर से की गई है। यह पत्थर निश्चित रुप से कही बाहर से लाए गए है, क्योकि इस क्षेत्र में इस प्रकार के पत्थर प्राप्त नही होते है। इस मंदिर के मण्डप की रचना पहिएदार रथ प्रकार में की गई है, जिसे हाथियों द्वारा खीचतें हुए दिखाया गया है। महामंडप के उत्तर में प्रतिष्ठित देवता की पत्नी देवी के लिए एक सामान्य सा अम्मान मंदिर है।[11]

कुलोतुंग तृतीय के समय त्रिभुवनम में कम्परेश्वर मंदिर का निर्माण करवाया गया। इसकी मूल संरचना ऐरावतेश्वर मंदिर के समान ही है। इस मंदिर का मूर्ति संयोजन तथा अलंकरण विधान की प्रमुखता इस तथ्य की ओर इंगित करते है कि तत्कालीन चालुक्य होयसल कला का प्रभाव चोल कला पर दिखाई देता है। पट्टियों वाला ड्यौढ़ी मंडप, विमान के आदितल के सामने के अक्षीय मंडपों क ऊपर हार तत्व का विस्तार मिलता है। इस मंदिर में उत्कृष्ट नृत्य मुद्रा के विभिन्न स्वरुप प्राप्त होते है, जो कि मूर्तियों के संग्रहालय के समान प्रतीत होता है। समकालीन मुख्य गोपुरों में से सामने का भीतरी एवं

पीछे के गोपुर शीर्ष पर नष्ट हो चुके है, जबकि बाहरी सामने वाला ऊँचा गोपुर अभी भी सुरक्षित अवस्था में है। इसका आकार उस काल के विशेष गोल मटोल आकार का है।[12]

चोल मंदिर स्थापत्य कला द्रविड़ स्थापत्य कला में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसकी स्थापत्य कला का प्रभाव न केवल भारत में वरन् दक्षिण पूर्व एशिया के मंदिर निर्माण पर भी दिखाई देता है। चोल स्थापत्य कला दक्षिण भारत में प्रचलित पूर्ववर्ती स्थापत्य कला से अनेक दृष्टि से विकसित स्वरुप में दिखाई देते है। इस काल के मंदिरों को विशाल आकार में निर्मित किया गया है। गोपुरम उतुंग तथा बड़ा बनाया गया है। चोल कला में गोपुरम का आकार बृहद् से बृहत्तर होता गया है। इस प्रकार चोल मंदिरों के विमान अर्थात गर्भगृह, शिखर एवं गोपुरम पूर्व काल की अपेक्षा बृहद् स्वरुप में दिखाई देते है। निर्माण सामग्री, मूर्ति स्थापत्य तथा कला के अन्य विभिन्न स्वरुपों को चोल काल में नवीन स्वरुप प्रदान किया गया है। राजराज प्रथम तथा राजेन्द्र प्रथम ने अपने राजनीतिक सर्वोच्चता के काल में विशिष्ट कला शैली को भी सर्वोच्च स्थान प्रदान करने का कार्य किया। अपनी धार्मिक मान्यताओं को पत्थरों के माध्यम से उकेर कर उनकों स्थायित्व प्रदान किया।

सन्दर्भ ग्रंथ

[1]. श्रीनिवासन ए0 के0 ए0 ;उमेश चन्द्र दीक्षित, दक्षिण भारत के मंदिर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत 2016, पृ0 स0 82
[2]. मिश्र, रमानाथ, भारतीय कला की विरासत, मैकमिलन्स प्रकाशन नई दिल्ली, 1977, पृ0 सं0 87
[3]. उपाध्याय,डॉ0 उदय नारायण, तिवारी, गौतम, भारतीय स्थापत्य एवं कला, मोतीलाल बनारसीदास, 2001, पृ0 सं0 225
[4]. दक्षिण भारतीय पुरालेखए भाग 13, 1949, पृ0 स0 149
[5]. रौलैड, बी0, आर्ट एण्ड आकिटेक्चर ऑफ इंडिया, पेन्गुइन, 1967 पृ0 स0 141
[6]. वाजपेयी, कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुकला का इतिहासए हिन्दी समिति, लखनऊ, 1972 पृ0 स0 129
[7]. जिमर, एच0, द आर्ट ऑफ इंडिया, न्यूयार्क, 1955, पृ0 स0 194
[8]. दूबे, श्यामचरण ;स0 भारतीय सांस्कृतिक धरोहर, मध्यप्रदेश हिन्दी गंरथ अकादमी भोपाल, 1987 पृ0 स0 102
[9]. बाशम, ए0 एल0 ;स0 कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंड़िया ऑक्सफोर्ड 1975, पृ0 स0 267
[10]. श्रीवास्तव, नीरज, मध्यकालीन भारतए प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, ओरियंट ब्लैकस्वान, 2018, पृ0 सं0 302
[11]. कुमारस्वामी, ए0 के0 हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इंडोनीसियन आर्ट 1965, पृ0 स0 126
[12]. अग्रवाल वी0 एस0, इंडियन आर्ट, पृथ्वी, वाराणसी, 1965 पृ0 स0 98